Dhanauri International Journal of Multidisciplinary Research (DIJMR)
Volume1Issue 2,December (2025)
ISSN: 3107-9563 (online)
doi.org/10.5281/zenodo.18271264

भारतीय ज्ञान प्रणाली : प्राचीन भौगोलिक चिंतन एवं आधुनिक प्रासंगिकता

(Indian Knowledge System: Ancient Geographical Thought and Its Modern Relevance)

डॉ सरला भारद्वाज,*
***असि.प्रोफेसर भूगोल विभाग हर्ष विद्या मंदिर (पी.जी) कॉलेज,रायसी हरिद्वार, उत्तराखंड**

सारांश:

भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System – IKS) विश्व की प्राचीनतम,समृद्ध एवं बहुआयामी ज्ञान परंपराओं में से एक है। जिसके अन्तर्गत भूगोल केवल पृथ्वी के भौतिक स्वरूप का अध्ययन ही नहीं बल्कि मानव, पर्यावरण और ब्रह्मांड केवैज्ञानिक एवं दार्शनिक संबंधों की समग्र संतुलित व्याख्या प्रस्तुत करता है।अर्थात भारतीय परंपरा में भूगोल को केवल पृथ्वी की भौतिक संरचना तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे मानव जीवन, पर्यावरणीय संतुलन, सांस्कृतिक विकास तथा नैतिक मूल्यों से जोड़कर देखा गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों–वेद, उपनिषद, पुराण,

महाकाव्य, बौद्ध एवं जैन साहित्य–में भौगोलिक चिंतन अत्यंत वैज्ञानिक, पर्यावरण–अनुकूल तथा जीवनोपयोगी रूप में मिलता है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, महाकाव्यों, बौद्ध एवं जैन साहित्य में भू–तत्त्व, जल, वायु, अग्नि, आकाश तथा जीव–जगत के पारस्परिक संबंधों का जो सूक्ष्म विवेचन मिलता है, वह प्राचीन भारतीयों की उन्नत भौगोलिक चेतना को दर्शाता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित प्राचीन भौगोलिक विचारों का विश्लेषण करना ही नहीं बल्कि उनका आधुनिक भूगोल, पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास और आपदा प्रबंधन में प्रासंगिकता को स्पष्ट करना भी है। भारतीय भूगोल केवल भौतिक धरातल के अध्ययन तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें पर्यावरण संरक्षण, संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, मानव–प्रकृति सहअस्तित्व तथा सतत विकास की अवधारणाएँ भी अंतर्निहित थीं। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक विकसित भौगोलिक दृष्टिकोण में नदियों, पर्वतों, वनों, जलवायु और प्राकृतिक आपदाओं के प्रति गहन वैज्ञानिक समझ दिखाई देती है, जो आज के पर्यावरणीय संकटों के समाधान में भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित भौगोलिक विचार आधुनिक भूगोल, पर्यावरण अध्ययन, आपदा प्रबंधन और सतत विकास लक्ष्यों के साथ गहरा सामंजस्य रखते हैं। प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग, मानव–प्रकृति के सहजीवी संबंध तथा दीर्घकालिक पर्यावरणीय स्थिरता जैसे सिद्धांत वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के समाधान हेतु अत्यंत प्रासंगिक हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली न केवल अतीत की बौद्धिक धरोहर है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की वैश्विक समस्याओं के समाधान हेतु एक व्यवहारिक, नैतिक एवं सतत दृष्टिकोण भी प्रदान करती है।

Corresponding author email:sarlabhardwaj23@gmail.com
Published online-17 January 2026

कुंजी शब्द: भारतीय ज्ञान प्रणाली, भूगोल, प्राचीन भौगोलिक चिंतन, पर्यावरण, आधुनिक प्रासंगिकता

1.प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल मानव सभ्यता के विकास के साथ निरंतर विकसित होने वाला एक ऐसा विषय रहा है।जिसने मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक संबंधों को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय परंपरा में भूगोल केवल भूमि, जल, वायु अथवा जलवायु के अध्ययन तक सीमित नहीं रहा हैं,इसे जीवन के समग्र दर्शन के रूप में देखा गया है। भारत में भूगोल का विकास केवल पश्चिमी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान प्रणाली के अंतर्गत अत्यंत व्यापक, दार्शनिक और पर्यावरणीय दृष्टि के साथ हुआ। भारतीय ज्ञान प्रणाली में प्रकृति को मात्र संसाधन न मानकर जीवन का आधार और सहचर माना गया है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय चिंतन में मानव और पर्यावरण के बीच संतुलन, सामंजस्य और सह-अस्तित्व की भावना अत्यंत सशक्त रूप में दिखाई देती है। भूगोल का यह मानवीय और नैतिक दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति की मूल आत्मा से जुड़ा हुआ है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में प्रकृति को संसाधन नहीं बल्कि जीवन का अभिन्न अंग माना गया है(राधाकृष्णन, 2008: 34)। इसी कारण प्राचीन भारतीय भूगोल मानव और पर्यावरण के बीच सामंजस्य पर आधारित रहा है।आधुनिक काल में जब जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाएँ और संसाधनों का अत्यधिक दोहन वैश्विक समस्याएँ बन चुकी हैं, तब भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित भौगोलिक चिंतन पुनः प्रासंगिक हो गया है,तथा भारतीय ज्ञान प्रणाली के भौगोलिक विचारों और उनकी आधुनिक उपयोगिता का विश्लेषण करता है। प्राचीन भारत में भूगोल का विकास केवल वैज्ञानिक जिज्ञासा का परिणाम नहीं था, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन से भी गहराई के साथ जुड़ा हुआ था। नदी , पर्वत, वन और भूमि को देवतुल्य मानकर उनका संरक्षण किया गया, जिससे पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विकसित हुई। भारतीय ज्ञान प्रणाली में भूगोल का उद्देश्य केवल भौतिक संसार को समझना नहीं, अपितु मानव जीवन को प्रकृति के अनुरूप ढालना था। इसी कारण यहाँ भूगोल को जीवनोपयोगी विद्या के रूप में देखा गया, जो कृषि, जल प्रबंधन, बसावट, व्यापार और संस्कृति के विकास में सहायक बनी।आधुनिक युग में जब औद्योगीकरण, नगरीकरण और तकनीकी विकास के कारण पर्यावरण असंतुलन, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक आपदाएँ वैश्विक समस्या का रूप ले चुकी हैं, तो भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित भौगोलिक चिंतन की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। वर्तमान समय की ये चुनौतियाँ यह संकेत देती हैं कि केवल तकनीकी समाधान ही पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना भी अनिवार्य है। इस संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली न केवल अतीत की विरासत है, बल्कि भविष्य की दिशा भी निर्धारित करती है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित भौगोलिक विचारों का विश्लेषण में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार प्राचीन भारतीय चिंतन आधुनिक भौगोलिक समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्ध हो सकता है तथा अकादमिक दृष्टि के साथ-साथ सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण और मानव कल्याण की दिशा में भी एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान करता है।

2. भारतीय ज्ञान प्रणाली की अवधारणा

भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System – IKS) से आशय उस व्यापक, समन्वित और बहुआयामी ज्ञान परंपरा से है, जो सहस्राब्दियों के अनुभव, चिंतन और साधना के माध्यम से भारतीय उपमहाद्वीप में विकसित हुई है। यह प्रणाली केवल

सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं रही, बल्कि जीवन के प्रत्येक पक्ष–भौतिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिकता को समाहित करती है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ, दर्शनशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तु, गणित, खगोलशास्त्र तथा भूगोल जैसे विविध विषय भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख स्तंभ रहे हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली की विशेषता यह है कि इसमें ज्ञान को पृथक-पृथक विषयों में विभाजित न करके एक समग्र एवं समन्वित दृष्टिकोण से देखा गया है। यहाँ ज्ञान का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन एवं सामंजस्य की स्थापना रहा है। भूगोल भी इसी समग्र दृष्टिकोण का अभिन्न अंग है, जहाँ पृथ्वी को केवल भौतिक इकाई न मानकर उसे जीवनदायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। पंचमहाभूत–भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश–को सृष्टि के मूल तत्व मानते हुए इनके पारस्परिक संबंधों के माध्यम से पर्यावरणीय संतुलन की व्याख्या की गई है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान प्रणाली न केवल वैज्ञानिक सोच को प्रोत्साहित करती है, बल्कि मानव और प्रकृति के सह-अस्तित्व की भावना को भी सुदृढ़ करती है, जो आज के पर्यावरणीय संकटों के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक बन जाती है।

3.प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भौगोलिक चिंतन

भारतीय सभ्यता की प्राचीनता का एक महत्वपूर्ण आधार उसका समृद्ध भौगोलिक ज्ञान है, जो वेदों, पुराणों तथा महाकाव्यों में व्यापक रूप से परिलक्षित होता है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भूगोल केवल भूमि के भौतिक स्वरूप का अध्ययन नहीं था, बल्कि मानव, प्रकृति और ब्रह्मांड के परस्पर संबंधों को समझने का एक माध्यम था। इन ग्रंथों में प्राकृतिक तत्वों को जीवनदायिनी शक्ति के रूप में देखा गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय चिंतन में पर्यावरण के प्रति गहरी संवेदनशीलता विद्यमान थी।

वेदों में भूगोल वेदों में भौगोलिक तत्वों का अत्यंत समृद्ध और सजीव चित्रण मिलता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में नदियों, पर्वतों, वनों, मैदानों, जलवायु तथा ऋतुचक्र का विस्तृत उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में 'सप्तसिन्धु' क्षेत्र का वर्णन मिलता है, जिसमें सिंधु, सरस्वती, गंगा, यमुना जैसी नदियाँ प्रमुख हैं। यहाँ इन नदियों को केवल जलधाराओं के रूप में नहीं, बल्कि जीवनदायिनी माताओं के रूप में पूजा गया है। सरस्वती नदी को ज्ञान और संस्कृति की अधिष्ठात्री माना गया, जो उस काल के उन्नत सभ्यतागत विकास का संकेत देती है। ऋग्वैदिक मंत्रों में पर्वतों को स्थायित्व और शक्ति का प्रतीक बताया गया है तथा वर्षा को जीवनचक्र का आधार माना गया है। ऋतुचक्र का उल्लेख कृषि, पशुपालन और मानव जीवन की नियमितता से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार वेदों में भूगोल एक जीवंत और क्रियाशील तत्त्व के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

पुराणों में भौगोलिक अवधारणा

पुराणों में भौगोलिक ज्ञान को अधिक व्यवस्थित और सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनमें जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मली द्वीप जैसे सात द्वीपों की अवधारणा मिलती है, जो तत्कालीन भौगोलिक दृष्टिकोण को दर्शाती है। भारतवर्ष को जम्बूद्वीप का प्रमुख भाग माना गया है, जिससे भारतीय उपमहाद्वीप की केंद्रीयता स्पष्ट होती है। पुराणों में पर्वतों–जैसे मेरु, हिमालय और विंध्य–का वर्णन केवल भौतिक संरचना के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रतीकों के रूप में किया गया है। यद्यपि इन वर्णनों में प्रतीकात्मकता अधिक है, फिर भी यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय समाज अपने भौगोलिक परिवेश के प्रति अत्यंत सजग था।

महाकाव्यों में भूगोल

रामायण और महाभारत में नगरों, मार्गों, नदियों, पर्वतों और वनों का यथार्थ चित्रण मिलता है। ये ग्रंथ तत्कालीन भौगोलिक ज्ञान और मानव–पर्यावरण संबंधों को स्पष्ट करते हैं। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य भारतीय भूगोल के अध्ययन के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। रामायण में अयोध्या, चित्रकूट, दंडकारण्य, किष्किंधा और लंका जैसे स्थानों का वर्णन तत्कालीन भौगोलिक ज्ञान को दर्शाता है। समुद्र, पर्वत, वन और नदियाँ कथा के अभिन्न अंग के रूप में उपस्थित हैं। वहीं महाभारत में हस्तिनापुर, इंद्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र तथा गंगा–यमुना दोआब का विस्तृत उल्लेख मिलता है। ये सभी विवरण उस काल के मानव–पर्यावरण संबंध, बसावट प्रणाली और भौगोलिक चेतना को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार प्राचीन भारतीय ग्रंथों में निहित भौगोलिक चिंतन न केवल ऐतिहासिक महत्व रखता है, बल्कि आधुनिक भूगोल के लिए भी एक समृद्ध वैचारिक आधार प्रदान करता है।

4. भारतीय भौगोलिक चिंतन में पंचमहाभूत सिद्धांत

वेदों में वर्णित पंचमहाभूत सिद्धांत यह बताता है कि प्राचीन भारतीय मनीषियों ने भौतिक जगत को एक समन्वित प्रणाली के रूप में समझा था, जो आधुनिक भौतिक भूगोल की अवधारणाओं से मेल खाता है (दासगुप्ता, 1997: 51)।पंचमहाभूत–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश–भारतीय भौगोलिक चिंतन की मूल आधारशिला हैं।पृथ्वी स्थलमंडल का प्रतिनिधित्व करती है, जल जलमंडल का, वायु वायुमंडल का, अग्नि ऊर्जा एवं ताप का तथा आकाश अंतरिक्ष एवं विस्तार का। यह सिद्धांत आधुनिक भौतिक भूगोल की अवधारणाओं से अत्यंत साम्यता रखता है।भारतीय भौगोलिक चिंतन का मूल आधार पंचमहाभूत सिद्धांत है, जिसके अंतर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को सृष्टि के मूल तत्व माना गया है। यह सिद्धांत केवल दार्शनिक या आध्यात्मिक विचार नहीं है, बल्कि इसमें प्रकृति की संरचना, उसकी क्रियाशीलता तथा मानव जीवन से उसके गहरे संबंध की वैज्ञानिक व्याख्या निहित है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने प्रकृति को अलग–अलग खंडों में विभाजित न करके एक समन्वित व्यवस्था के रूप में देखा, जिसमें प्रत्येक तत्व एक–दूसरे पर आश्रित है। यही समग्र दृष्टिकोण भारतीय भौगोलिक चिंतन की विशिष्ट पहचान है। पृथ्वी तत्व को स्थायित्व, आधार और संरचना का प्रतीक माना गया है। यह स्थलमंडल का प्रतिनिधित्व करती है, जिस पर मानव सभ्यता, कृषि, वनस्पति और जीव–जंतु आश्रित हैं। प्राचीन ग्रंथों में पृथ्वी को 'धरणी' और 'वसुंधरा' कहा गया है, जो जीवन को धारण करने वाली शक्ति को दर्शाता है। पर्वत, पठार, मैदान और मिट्टी की उर्वरता जैसे भौगोलिक तत्वों की समझ इसी अवधारणा से विकसित हुई। जल तत्व को जीवन का मूल स्रोत माना गया है। नदियाँ, झीलें, समुद्र और वर्षा–सभी जलमंडल के घटक हैं, जिनके बिना जीवन की कल्पना असंभव है। वैदिक साहित्य में जल को शुद्धिकरण, पोषण और संतुलन का प्रतीक माना गया है, जो आधुनिक जल विज्ञान और जलचक्र की अवधारणा से मेल खाता है।वायु तत्व वायुमंडल का प्रतिनिधित्व करता है, जो जीवन के लिए अनिवार्य है। प्राणवायु की अवधारणा यह दर्शाती है कि वायु केवल भौतिक नहीं, बल्कि जीवनदायिनी शक्ति भी है। प्राचीन भारतीय चिंतन में वायु को गति, ऊर्जा और संतुलन का माध्यम माना गया है, जो आज के वायुमंडलीय अध्ययन और जलवायु विज्ञान से साम्यता रखता है। अग्नि तत्व ऊर्जा, ताप और परिवर्तन का प्रतीक है। सूर्य को अग्नि का प्रमुख स्रोत माना गया, जो पृथ्वी पर ऊर्जा का आधार है। मौसम चक्र, तापमान और जैविक क्रियाओं में अग्नि तत्व की भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अंततः आकाश तत्व विस्तार, रिक्तता और ब्रह्मांडीय चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे आधुनिक विज्ञान में अंतरिक्ष और ब्रह्मांडीय संरचना के रूप में समझा जा सकता है।इस प्रकार

पंचमहाभूत सिद्धांत न केवल दार्शनिक अवधारणा है, बल्कि यह प्राकृतिक पर्यावरण की वैज्ञानिक व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। यह सिद्धांत मानव और प्रकृति के बीच संतुलन, सहअस्तित्व और पारस्परिक निर्भरता को रेखांकित करता है। आधुनिक भौतिक भूगोल की अवधारणाएँ–जैसे स्थलमंडल, जलमंडल, वायुमंडल और जैवमंडल–भारतीय ज्ञान परंपरा के इसी मूल चिंतन से गहरे रूप में जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं।

5. पर्यावरणीय दृष्टिकोण और भारतीय ज्ञान प्रणाली

प्राचीन भारतीय समाज में वन, पर्वत और नदियाँ केवल भौगोलिक इकाइयाँ नहीं थीं, बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना के केंद्र थे (गुप्ता, 2015: 102)।जहां पर्यावरण संरक्षण को धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक कर्तव्य माना गया है। नदियों, वनों और पर्वतों को पवित्र मानने की परंपरा ने जैव विविधता संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पवित्र वन (Sacred Groves), पारंपरिक जल संरचनाएँ और प्राकृतिक संसाधनों का सीमित उपयोग इस दृष्टिकोण के उदाहरण हैं। इस ज्ञान प्रणाली में पर्यावरण केवल भौतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। यहाँ प्रकृति को उपभोग की वस्तु न मानकर माता के रूप में पूज्य स्थान दिया गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार मनुष्य, प्रकृति और ब्रह्मांड के बीच गहरा और अविच्छिन्न संबंध है, जिसके संतुलन से ही जीवन संभव है। यही कारण है कि पर्यावरण संरक्षण को केवल वैज्ञानिक या आर्थिक आवश्यकता नहीं, बल्कि धार्मिक, नैतिक और सामाजिक कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया गया। प्राचीन ग्रंथों, परंपराओं और लोकविश्वासों में प्रकृति के प्रति आदर, संयम और संरक्षण की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारतीय समाज में नदियों को माता का दर्जा दिया गया–जैसे गंगा, यमुना, नर्मदा और सरस्वती–जो जल संरक्षण और स्वच्छता के प्रति जनमानस को जागरूक करने का माध्यम बनीं। इसी प्रकार वनों को देवताओं का निवास स्थान माना गया। 'वनदेवी' और 'वृक्ष देवता' की अवधारणा ने वृक्षों की अंधाधुंध कटाई पर नैतिक नियंत्रण स्थापित किया। पीपल, बरगद, नीम जैसे वृक्षों को पवित्र मानकर उनकी पूजा की जाती थी, जिससे जैव विविधता का संरक्षण स्वाभाविक रूप से होता रहा। यह परंपरा आज के पर्यावरण संरक्षण सिद्धांतों से पूरी तरह मेल खाती है। पवित्र वन (Sacred Groves) भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जहाँ मानव हस्तक्षेप को सीमित रखा गया। ये वन जैव विविधता के सुरक्षित भंडार के रूप में कार्य करते थे और स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित बनाए रखते थे। इसी प्रकार पारंपरिक जल संरचनाएँ–जैसे बावड़ी, तालाब, कुएँ, जोहड़ और कुंड–जल संरक्षण, भूजल पुनर्भरण और सामुदायिक सहभागिता का श्रेष्ठ उदाहरण थीं। इन संरचनाओं का निर्माण स्थानीय भूगोल, वर्षा के तरीकों और सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता था, जो भारतीय पर्यावरणीय बुद्धिमत्ता को दर्शाता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में संसाधनों के अति-उपयोग को नैतिक अपराध माना गया है। 'अपरिग्रह' और 'संतोष' जैसे सिद्धांतों ने सीमित उपभोग और संतुलित जीवनशैली को प्रोत्साहित किया। इस दृष्टिकोण ने मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य बनाए रखा तथा पर्यावरणीय संकटों की संभावना को न्यूनतम किया। आज के संदर्भ में, जब वैश्विक स्तर पर पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता ह्रास जैसी समस्याएँ गंभीर रूप ले चुकी हैं, तब भारतीय ज्ञान प्रणाली का यह पर्यावरणीय दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक और प्रेरणादायक सिद्ध होता है। यह हमें सिखाता है कि सतत विकास तभी संभव है जब मानव अपने व्यवहार में नैतिकता, संयम और प्रकृति के प्रति सम्मान को अपनाए।

6. जल संसाधन प्रबंधन में प्राचीन भारतीय ज्ञान

ऋग्वेद में नदियों को 'मातृस्वरूपा' मानते हुए उनके संरक्षण की भावना व्यक्त की गई है, जो प्राचीन जल प्रबंधन की वैज्ञानिक समझ को दर्शाती है (ऋग्वेद, 10.75)।प्राचीन भारत में तालाब, बावड़ी, कुएँ, आहर-उत्पादन और नहर प्रणालियाँ विकसित की गई थीं। यह जल प्रबंधन स्थानीय भूगोल और जलवायु के अनुरूप था, जो आज सतत विकास के लिए अत्यंत उपयोगी है। प्राचीन भारतीय सभ्यता में जल को जीवन का आधार माना गया था और इसी दृष्टिकोण के कारण जल संसाधनों के संरक्षण, संचयन एवं प्रबंधन की अत्यंत विकसित परंपरा विकसित हुई। भारतीय ज्ञान प्रणाली में जल को केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि पूजनीय एवं संरक्षित तत्व के रूप में देखा गयाअर्थात उस समय पारंपरिक जल संरचनाएँ जैसे बावड़ी, तालाब और जोहड़ स्थानीय भूगोल के अनुरूप विकसित की गई थीं, जो आज भी सतत जल प्रबंधन के उत्कृष्ट उदाहरण हैं (सिंह, 2016: 118)। इसी सोच के परिणामस्वरूप प्राचीन भारत में तालाबों, बावड़ियों, कुओं, आहर- उत्पन्न करने वाली, झीलों और नहरों जैसी उन्नत जल संरचनाओं का विकास हुआ, जो स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों और जलवायु के अनुरूप निर्मित की जाती थीं। यह व्यवस्था न केवल पेयजल आपूर्ति सुनिश्चित करती थी, बल्कि कृषि, पशुपालन और दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को भी संतुलित रूप से पूरा करती थी। प्राचीन भारतीय समाज में जल प्रबंधन पूरी तरह सामुदायिक सहभागिता पर आधारित था। गाँवों और नगरों में तालाबों व कुओं का निर्माण, रखरखाव और संरक्षण सामूहिक उत्तरदायित्व माना जाता था। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रचलित आहर- उत्पादन प्रणाली वर्षा जल संचयन की एक अत्यंत वैज्ञानिक व्यवस्था थी, जिसके माध्यम से वर्षा जल को खेतों तक पहुँचाकर कृषि उत्पादन बढ़ाया जाता था। इसी प्रकार राजस्थान और गुजरात जैसे शुष्क क्षेत्रों में बावड़ियाँ और कुएं बनाए गए, जो भूमिगत जल को संरक्षित रखते थे और सूखे के समय जीवनदायिनी सिद्ध होते थे। इन सबका निर्माण स्थानीय भू-आकृति, वर्षा की मात्रा और मिट्टी की प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाता था, जो उस समय के गहन भौगोलिक ज्ञान को दर्शाता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में जल का संरक्षण केवल तकनीकी नहीं बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक दायित्व भी था। जल स्रोतों को पवित्र माना जाता था और उनके प्रदूषण को पाप समझा जाता था। धार्मिक अनुष्ठानों, पर्वों और लोक परंपराओं के माध्यम से लोगों को जल संरक्षण के प्रति जागरूक किया जाता था। इस प्रकार समाज स्वयं जल संसाधनों की रक्षा का प्रहरी बन जाता था। आधुनिक समय में जब जल संकट, भूजल दोहन और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याएँ विकराल रूप ले चुकी हैं, तब प्राचीन भारतीय जल प्रबंधन प्रणाली अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती है। यह हमें बताती है कि सतत विकास तभी संभव है जब स्थानीय ज्ञान, पर्यावरणीय संतुलन और सामुदायिक सहभागिता को विकास की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाया जाए।भारतीय सभ्यता में जल संरक्षण की परंपरा केवल उपयोग तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक एवं धार्मिक उत्तरदायित्व से भी जुड़ी हुई थी (अग्रवाल एवं नारायण, 1997: 44)।

7. आधुनिक भूगोल के संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रासंगिकता

महाभारत और रामायण जैसे महाकाव्यों में भूगोल का चित्रण उस समय की भौगोलिक समझ, जलवायु ज्ञान और मानव-प्रकृति संबंधों को स्पष्ट करता है (वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड; महाभारत, भीष्म पर्व)। जबकि आधुनिक भूगोल में पर्यावरण भूगोल, आपदा प्रबंधन, जलवायु अध्ययन और क्षेत्रीय योजना जैसे विषय प्रमुख रहे हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित स्थानीय ज्ञान, पर्यावरण संतुलन और संसाधन संरक्षण की अवधारणाएँ इन सभी क्षेत्रों में समाधान

प्रस्तुत कर सकती हैं। अतः आधुनिक भूगोल एक बहुआयामी विज्ञान के रूप में पर्यावरण, मानव गतिविधियों और प्राकृतिक संसाधनों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करता है। आज के समय में जब जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय असंतुलन, प्राकृतिक आपदाएँ और संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ वैश्विक चुनौती बन चुकी हैं, तब भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) के सिद्धांत आधुनिक भूगोल के लिए अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा प्रकृति को केवल अध्ययन की वस्तु नहीं मानती, बल्कि उसे जीवन का अभिन्न अंग मानकर उसके साथ संतुलन और सहअस्तित्व की भावना पर बल देती है। यही दृष्टिकोण आधुनिक भूगोल की मूल भावना से गहराई से जुड़ा हुआ है। पर्यावरण भूगोल के क्षेत्र में भारतीय ज्ञान प्रणाली प्रकृति संरक्षण और सतत विकास का व्यवहारिक मार्ग प्रस्तुत करती है। प्राचीन भारतीय समाज में भूमि, जल, वन और जीव-जंतुओं के संरक्षण को नैतिक दायित्व माना गया था। वनों की पूजा, नदियों को माता का स्वरूप देना और पर्वतों को देवतुल्य मानना केवल धार्मिक आस्था नहीं थी, बल्कि यह पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने की एक प्रभावी सामाजिक व्यवस्था थी। आज जब वनों की कटाई, जैव विविधता ह्रास और प्रदूषण जैसी समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं, तब यह दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरण भूगोल के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है। आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में भी भारतीय ज्ञान प्रणाली अत्यंत उपयोगी है। प्राचीन काल में बाढ़, सूखा, भूकंप और अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए स्थानीय ज्ञान पर आधारित उपाय अपनाए जाते थे। पारंपरिक जल संचयन प्रणालियाँ, ऊँचे चबूतरे पर बस्तियों का निर्माण, और फसलों का विविधीकरण प्राकृतिक आपदाओं के प्रभाव को कम करने में सहायक थे। आधुनिक पर्यावरणीय संकटों के संदर्भ में पारंपरिक भारतीय ज्ञान प्रणाली एक वैकल्पिक विकास मॉडल प्रस्तुत करती है, जो संतुलन, संरक्षण और सह-अस्तित्व पर आधारित है (Gadgil&Guha, 1995: 63)।**आधुनिक आपदा प्रबंधन में जब 'स्थानीय ज्ञान आधारित दृष्टिकोण' (Community-based Disaster Management)** पर बल दिया जा रहा है, तब भारतीय परंपराएँ एक सशक्त आधार प्रदान करती हैं। जलवायु अध्ययन के क्षेत्र में भी भारतीय ज्ञान प्रणाली की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऋतुचक्र, मानसून प्रणाली, कृषि चक्र और जैविक संकेतों के माध्यम से मौसम की पहचान प्राचीन काल से की जाती रही है। यह ज्ञान आज के जलवायु परिवर्तन अध्ययन में सहायक हो सकता है, विशेषकर जब स्थानीय स्तर पर अनुकूलन (adaptation) की बात की जाती है। इसी प्रकार क्षेत्रीय नियोजन (Regional Planning) में भी भारतीय परंपरा स्थानीय संसाधनों, जनसंख्या और पर्यावरणीय सीमाओं को ध्यान में रखकर संतुलित विकास पर बल देती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि आधुनिक भूगोल के लिए एक व्यावहारिक, टिकाऊ और मानव-केंद्रित दृष्टिकोण प्रदान करती है। यदि आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों को पारंपरिक ज्ञान के साथ जोड़ जाए, तो सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण और आपदा प्रबंधन जैसे वैश्विक मुद्दों का प्रभावी समाधान संभव हो सकता है।

8. भारतीय ज्ञान प्रणाली और सतत विकास

भारतीय ज्ञान प्रणाली में संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर विशेष बल दिया गया है, जिसे 'अपरिग्रह' की अवधारणा द्वारा नैतिक आधार प्राप्त होता है (शर्मा, 2010: 88)। इस प्रणाली का मूल सिद्धांत "प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व" की भावना विकसित करना रहा है। जो आधुनिक सतत विकास (Sustainable Development) की अवधारणा से पूर्णतः मेल खाती है।यह दृष्टिकोण मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका अभिन्न अंग

मानता है। प्राचीन भारतीय चिंतन में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि मानव जीवन की निरंतरता तभी संभव है जब वह प्रकृति के नियमों के अनुरूप आचरण करे। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में उपभोग से अधिक संरक्षण, और दोहन से अधिक संतुलन पर बल दिया गया है। यह विचारधारा आधुनिक काल की सतत विकास (Sustainable Development) की अवधारणा से पूर्णतः सामंजस्य रखती है, जिसका मुख्य उद्देश्य वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भावी पीढ़ियों के संसाधनों की रक्षा करना है।भारतीय परंपरा में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना संपूर्ण विश्व को एक परिवार मानती है, जहाँ मानव, पशु, वनस्पति और प्राकृतिक संसाधन समान रूप से सम्मान के पात्र हैं। इसी दृष्टि से जल, भूमि, वन और वायु को केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि संरक्षण योग्य धरोहर माना गया। कृषि, वानिकी, जल प्रबंधन और ऊर्जा उपयोग के पारंपरिक तरीके इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन समाज ने सीमित संसाधनों के भीतर रहकर संतुलित जीवन जीने की कला विकसित की थी। वर्षा जल संचयन, मिश्रित खेती, जैविक कृषि और स्थानीय संसाधनों पर आधारित जीवनशैली सतत विकास की मूल अवधारणाओं को पहले ही व्यवहार में ला चुकी थीं। भारतीय ज्ञान प्रणाली यह भी सिखाती है कि विकास का वास्तविक अर्थ केवल आर्थिक वृद्धि नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय संतुलन और नैतिक जिम्मेदारी का समन्वय है। "अपरिग्रह" और "संतोष" जैसे सिद्धांत अनियंत्रित उपभोग पर रोक लगाते हैं और संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देते हैं। आधुनिक समय में जब औद्योगीकरण और उपभोक्तावाद ने पर्यावरणीय संकट को गहरा कर दिया है, तब भारतीय ज्ञान प्रणाली का यह दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल अतीत की सांस्कृतिक विरासत नहीं, बल्कि भविष्य के लिए एक व्यवहारिक मार्गदर्शक है। सतत विकास के वैश्विक लक्ष्यों–जैसे पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समानता और आर्थिक संतुलन–को प्राप्त करने में भारतीय ज्ञान परंपरा एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान करती है। यदि आधुनिक विज्ञान और तकनीक को इस पारंपरिक ज्ञान के साथ जोड़ा जाए, तो मानव सभ्यता एक अधिक संतुलित, न्यायपूर्ण और टिकाऊ भविष्य की ओर अग्रसर हो सकती है।

9. निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान प्रणाली में भूगोल एक वैज्ञानिक, पर्यावरण–अनुकूल और मानव–केंद्रित विषय रहा है। प्राचीन भारतीय भौगोलिक चिंतन आज की वैश्विक समस्याओं, पर्यावरण संकट, जलवायु परिवर्तन और आपदाओं के समाधान में अत्यंत प्रासंगिक है।भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित पर्यावरणीय चेतना आधुनिक भूगोल, जलवायु अध्ययन एवं आपदा प्रबंधन के लिए एक वैचारिक आधार प्रदान करती है(Trewartha, 2008: 97)। अतः आधुनिक भूगोल अध्ययन मेंभारतीय ज्ञान प्रणालीको सम्मिलित करना समय की आवश्यकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में भूगोल केवल भौतिक धरातल का अध्ययन नहीं है, बल्कि यह मानव, प्रकृति और ब्रह्मांड के बीच गहरे और संतुलित संबंधों की समग्र व्याख्या प्रस्तुत करता है। प्राचीन भारतीय चिंतन में भूगोल को एक ऐसे जीवंत विज्ञान के रूप में देखा गया, जो पर्यावरण, समाज और संस्कृति को आपस में जोड़ता है। भूमि, जल, वायु, अग्नि और आकाश जैसे पंचमहाभूतों की अवधारणा यह दर्शाती है कि भारतीय मनीषियों ने प्राकृतिक तत्वों को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने के साथ–साथ उन्हें जीवन का आधार भी माना। यह दृष्टिकोण आधुनिक भौगोलिक चिंतन से कहीं अधिक व्यापक, मानवीय और दूरदर्शी प्रतीत होता है। आज के वैश्विक परिदृश्य में जब मानवता जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक आपदाओं, पर्यावरण प्रदूषण और संसाधनों के

अंधाधुंध दोहन जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है, तब भारतीय ज्ञान प्रणाली में निहित सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होते हैं। प्राचीन भारतीय समाज ने प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व, संतुलन और संयम के सिद्धांतों को अपनाकर यह सिद्ध किया कि विकास और संरक्षण एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हो सकते हैं। जल प्रबंधन, वन संरक्षण, भूमि उपयोग और आपदा प्रबंधन से संबंधित पारंपरिक ज्ञान आज के वैज्ञानिक प्रयासों को दिशा प्रदान कर सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक व्यवहारिक मार्गदर्शक है।

आधुनिक भूगोल में यदि भारतीय ज्ञान परंपरा के सिद्धांतों को समाहित किया जाए, तो सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण और मानव कल्याण के लक्ष्यों को अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। अतः आने वाले समय की आवश्यकता है कि शिक्षा, अनुसंधान और नीति निर्माण में भारतीय ज्ञान प्रणाली को उचित स्थान दिया जाए, जिससे एक संतुलित, संवेदनशील और समावेशी विश्व की स्थापना संभव हो सके।

1. संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

2. शर्मा, आर. एस. (2011). प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान.(पृष्ठ 45–78)

3. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (2008). भारतीय दर्शन. नई दिल्ली: राजपाल एंड संस।(पृष्ठ 12–36)

4. शर्मा, रामशरण (2010). भारत का प्राचीन इतिहास. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। (पृष्ठ 22–65)

5. दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ (1997). A History of Indian Philosophy, Vol. I. Cambridge: Cambridge University Press. (pp. 18–54)

6. सिंह, सविंद्र (2014). भौतिक भूगोल. नई दिल्ली: प्रयाग पुस्तक भवन। (पृष्ठ 101–145)

7. चतुर्वेदी, बी.एन. (2012). भूगोल का स्वरूप एवं विकास. वाराणसी: छात्र प्रकाशन। (पृष्ठ 67–94)

8. Strahler, A. N. &Strahler, A. H. (2011). Physical Geography: Science and Systems of the Human Environment. New York: Wiley.(pp. 23–60)

9. गुप्ता, एस. पी. (2015). भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चेतना. नई दिल्ली: भारतीय विद्या भवन। (पृष्ठ 89–132)

10. सिंह, वी. पी. (2016). जल संसाधन प्रबंधन: भारतीय परिप्रेक्ष्य. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन्स। (पृष्ठ 101–140)

11. अथर्ववेद, कांड 12 — पृथ्वी सूक्त
12. विष्णु पुराण, भाग 2 — भूगोल वर्णन
13. वाल्मीकि रामायण — अरण्यकाण्ड एवं किष्किन्धा काण्ड
14. महाभारत — वन पर्व एवं भीष्म पर्व